विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ११, शुक्रवार, तारीख २२-८-१९८०
वचनामृत- २४१, २४४, २५१ प्रवचन-१५

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द॥२४१॥

वचनामृत २४१, किसी ने इसमें लिखा है, उस अनुसार पढ़ते हैं। कोई कागज रखकर गया है। **ओहो! यह तो भगवान आत्मा!** जहाँ दृष्टि का विषय का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। इस आनन्द के अनुभव में, **ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति!** आहाहा! तेरी दृष्टि वहाँ लगा दे। भगवान अहो! आश्चर्यकारी, सहजानन्दस्वरूप। यह सहजानन्द स्वामीनारायण के नहीं। सहज स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। तो कहते हैं, **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द।** आहाहा! भगवान आत्मा को आनन्दमय देखने से जहाँ से देखो वहाँ आनन्द ही आनन्द अन्दर है। अन्दर में कोई विकल्प, दुःख, राग है नहीं। आहाहा! सहजानन्द की मूर्ति। सहज आनन्द का स्वरूप प्रभु। **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द।** आहाहा!

जैसे मिश्री में... शक्कर में **मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द है।** आहा..! जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास है, वैसे भगवान आत्मा में सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द सम्यग्दर्शन का ध्येय-विषय है। उसके ध्येय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन में ऐसा भास हुआ, अहो..! सहजानन्द की मूर्ति प्रभु! जहाँ देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द अतीन्द्रिय।

मिश्री में जहाँ देखो वहाँ मिठास (भरी है)। शक्कर में। वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। शक्कर जैसे मिठास का पिण्ड है। वैसे भगवान आत्मा

अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! उस विषय में आनन्द आता है, तब सम्यग्दृष्टि को ऐसा भासता है कि अहो..! यह आत्मा! अकेले आनन्द से भरा हुआ, जिसमें कोई अंश मात्र संसार, संसार का उदयभाव, अरे..! उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव भी जिसमें नहीं है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा की दृष्टि जहाँ अन्तर हुई, तो जैसे मिश्री में चारों ओर से मिठास (भरी) है; वैसे भगवान में चारों ओर से अतीन्द्रिय आनन्द (भरा) है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! मूल बात तो यह है।

सम्यग्दृष्टि अर्थात् श्रद्धामात्र, ऐसे नहीं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा या तत्त्वार्थ की श्रद्धा, उतने मात्र नहीं। अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में अनुभव का आनन्द होकर श्रद्धा (हुई हो)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सर्वांग पूर्ण प्रभु, अतीन्द्रिय आननद से भरा पड़ा, जहाँ देखो वहाँ नजर में आनन्द आता है। उसका नाम आत्मा और उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसका विषय यह आत्मा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! बहिन ने तो अन्दर में अनुभव करते-करते बोले हैं। ऐसी भाषा भी बाहर आनी मुश्किल है। आहाहा! कोई बार ऐसे शब्द बोल दिये। आहा..!

मिश्री में सर्वांग मिठास,... मिश्री तो अनन्त परमाणु का पिण्ड है। शक्कर की डली अनन्त परमाणु का पिण्ड है। यह तो एक ही द्रव्य है। आहाहा! एक द्रव्य में आनन्द का आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु असंख्य प्रदेश में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उस आनन्द का अनुभव करके सम्यग्दृष्टि को सर्वांग आनन्द दिखता है। आहाहा! २४१ (पूरा हुआ)। फिर २४४। २४४ लिया है।

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि, अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं है। ओहो! यह मैं ? ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया॥२४४॥

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर,... आहाहा! आत्मा अर्थात् क्या है, प्रभु! चैतन्य की चमत्कृति अनुभव में सम्यग्दर्शन हो, तब उसमें चमत्कृति क्या है, उसका पता मिल जाए तो दुनिया की सब उड़ जाए। सब बात में से, सब विकल्प में से मिठास

उड़ जाए और सबमें ज्ञाता-दृष्टा हो जाए। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप में जहाँ अनुभव हुआ तो पूरी दुनिया से उदास हुआ। दुनिया में ठीक-अठीक, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। क्योंकि ज्ञेय है, वह एक प्रकार का है। ज्ञान एक प्रकार का ज्ञेयस्वरूप जानता ही है। कोई अच्छा या बुरा, ऐसा उसमें है नहीं। ऐसी दृष्टि आनन्द की होती है, तब होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

बाह्य प्रवृत्ति के समक्ष अन्तर आनन्द की कीमत उड़ गई। आहा..! बाह्य प्रकृति के प्रेम में पुण्य की क्रिया के-शुभ की क्रिया के प्रेम में आनन्दस्वरूप भगवान उस शुभ के पीछे पड़ा है, उसकी कीमत-महत्ता-महिमा-उड़ गई और पुण्य की महिमा रह गई। अनादि काल से। नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया साधु होकर। कितनी क्रिया की। वर्तमान में तो ऐसी क्रिया है भी नहीं। फिर भी आनन्दस्वरूप भगवान, उसके तल में नहीं गया। पर्याय का तल है, तलिया.. तलिया समझते हो? भाषा है? अन्दर पर्याय के तल में दृष्टि जहाँ रुकती है, तब आनन्द... आनन्द... आनन्द का अनुभव करता है। इस आनन्द के समक्ष सर्वार्थसिद्ध के देव का आनन्द भी जिसके आगे, सम्यग्दर्शन है उतना आनन्द है, परन्तु उससे आगे बढ़कर जो पंचम गुणस्थान हुआ हो आत्मा में... आहाहा! सर्वार्थसिद्ध का देव समकिती एकावतारी, एक भवतारी को जो आनन्द है, उससे पंचम गुणस्थानवाला श्रावक, सच्चा श्रावक, उसका आनन्द सर्वार्थसिद्ध के देव से भी विशेष आनन्द बढ़ गया है। आहाहा! जो एक भवतारी है। कितने तो बारह अंगधारी है। सर्वार्थसिद्ध में भी बारह अंगधारी। क्योंकि यहाँ बारह अंग का ज्ञान हुआ था, वह बारह अंग का ज्ञान लेकर गये और उसका आनन्द भी साथ में है। उसके आनन्द से पंचम गुणस्थानवाला श्रावक, जो सच्चा श्रावक है, आत्मा का आननद का अनुभवसहित स्थिरता, आंशिक शान्ति बढ़ गई है। जो शान्ति की स्थिति चौथे गुणस्थान में है, उससे पंचम में शान्ति और आनन्द थोड़ा बढ़ गया। आहाहा! इसलिए। आहाहा!

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर है। अनन्त विभूतियों से भरपूर है। शब्द क्या काम करे? ओहो..! शब्द की जहाँ गन्ध नहीं। कल आया था न? स्वर, आत्मा में है नहीं। आहाहा! विकल्प और यह स्वर शब्द, स्वरूप में है नहीं। वहाँ स्वर क्या काम करे? आहाहा! शब्द जड़, भगवान चेतन। दोनों विरुद्ध। दुश्मन के पास सज्जन के गुण

बुलाये तो वह कितना बोले ? आहाहा ! ऐसे भगवान आत्मा का अनुभव होने पर, वाणी जड़ है, वह कितना काम करे ? आहाहा ! जो अनुभव में आता है, वह बात वाणी कह सकती नहीं। वाणी जड़ विरुद्ध है। आहाहा ! चैतन्य और परमाणु के बीच में तो अत्यन्त अनन्त अभाव है। भगवान की वाणी भी जड़ है। आहाहा ! वाणी में कितना आता है ? अनन्तवें भाग में आता है, ऐसा पाठ है।

भगवान सर्वज्ञदेव अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण मूर्ति खिल गई है। पूरा कमल खिल गया है। आहाहा ! बत्तीस पंखुड़ी से जैसे कमल खिलता है, वैसे भगवान अनन्त गुण से खिल गया है। ऐसे सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी भी आत्मा से तो विरुद्ध है। आहाहा ! वाणी में कितना आवे ? वाणी तो जड़, अजीव और रूपी है। **भगवान आत्मा अनन्त विभूतियों से भरपूर...** आहाहा ! वह तो सम्यक् हो, तब उसे खबर पड़े कि यह चीज़ क्या है। आहाहा ! और वह चीज़ करने की पहली चीज़ है। आत्मा तो **अनन्त विभूतियों से भरपूर...** आहा..! कोई भी विभूति—ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व, स्वच्छत्व आदि। अरे..! सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्व वीर्य आदि पूर्ण भरा है। अन्तर में सर्वज्ञशक्ति पूर्ण पड़ी है। सर्वज्ञशक्ति, सर्वदर्शीशक्ति, पूर्ण वीर्यशक्ति, पूर्ण वीर्य-बल। आत्मानुभव में जो बल का अनुभव का अंश आता है, वह पूरा अकेले बल का अनुभव है। वह अनन्त बल का धनी है। ओहोहो ! आत्मा की बात सुनी नहीं, प्रभु ! सुनी हो तो दूसरे कान से निकाल दी है। करना तो यह है या नहीं ? चाहे जितनी बात करे, करना तो यह है। आहा..! दोनों में आया न ? पहले में भी ओहो..! आया था। इसमें भी अहो ! (आया)।

आत्मा तो **अनन्त विभूतियों से भरपूर...** अनन्त विभूतियों से भरपूर। दुनिया के पास कितने पैसे हों ? अरब रुपया। अरे..! हमारे समय में तो सौ अरब को खरब कहते हैं और सौ खरब को निखरब कहते हैं। खरब, निखरब, महापद्म, ... ऐसे बोल आते हैं। स्कूल में ८० साल पहले यह चलता था। ... तक संख्या चलती थी। सौ अरब का एक खरब। तो ... भी क्या है ? आहाहा ! खरब की तो बात क्या, लेकिन ... भी क्या है ? यह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भाषा शब्द में अनन्त आता है, परन्तु वाच्य जो अनन्त है... आहाहा ! अनन्त, यह वाचक शब्द है। जैसे शक्कर शब्द है, उस शब्द में शक्कर नहीं है और शक्कर है, उसमें शब्द नहीं है। ऐसे अनन्त विभूति शब्द है, वह भगवान में नहीं है। आहाहा !

शक्कर में शक्कर शब्द नहीं है और शब्द में शक्कर नहीं है। वैसे वाणी में भगवान नहीं और भगवान में वाणी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि,... अनन्त गुण का ढ़ेर-राशि पड़ी है। अरूपी है, क्षेत्र भले छोटा हो। अरे..! निगोद का आत्मा हो, तो भी ऐसा ही है। पर्याय में अन्तर है। आत्मा तो अनन्त विभूति से भरा पड़ा है और अनन्त गुणों की राशि है। परन्तु उसको खबर नहीं। यहाँ तो खबर है, वह कहते हैं कि अनन्त गुणों की राशि है। ज्ञान हुआ, वस्तु का ज्ञान हुआ, वस्तु की प्रतीति हुई, वस्तु का ज्ञान में पूर्ण ज्ञेय बन गया, ज्ञान में पूरी चीज़ ज्ञेय पूर्ण बन गयी। उसे वाणी कहती है, वह वाणी भी उसमें तो है नहीं। आहाहा! कितनी बात करे? आहा..!

अनन्त गुणों की राशि, अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! आहाहा! अरूपी चिदानन्द भगवान अरूपी शान्ति का महा पर्वत है। अनन्त विभूति, अनन्त शक्ति, अनन्त गुण उसका महाप्रभु पर्वत है। आहाहा! पर्वत में तो अनन्त परमाणु हैं। वह तो अनन्त द्रव्य हैं, यह एक द्रव्य है। आहाहा! (एक) द्रव्य में भी अनन्त-अनन्त विभूति इतनी है कि कोई संख्या में पार न आवे। आहा..! पर्वत की तो उपमा दी है। पर्वत तो अनन्त परमाणु का पिण्ड / स्कन्ध है, स्कन्ध। एक द्रव्य नहीं है। आहाहा! भगवान तो एक द्रव्य है। पर्वत तो प्रभु! अनन्त-अनन्त परमाणु का पिण्ड पर्वत। उसमें से जैसे पानी झरता है, ऐसे भगवान एक-एक द्रव्य अनन्त गुण का भण्डार, उसकी अन्तर्दृष्टि हुई तो समय-समय में आनन्द झरता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन समकिती को समय-समय में वेदन है। आहाहा!

ऐसा भगवान! **चारों ओर गुण ही भरे हैं।** आहाहा! चारों ओर अर्थात् किसी भी ओर से देखो अकेले गुण ही भरे हैं। विभूति कहा, अनन्त गुण का पर्वत कहा, अनन्त गुण की राशि कहा और चारों ओर गुण ही भरे हैं, ऐसा कहा। आहाहा! देखो! यह वचनामृत! कहा न?

गोपनाथ का कोई एक साधु है। गोपनाथ है। उसके हाथ में यह पुस्तक गया। पुस्तक बहुत छप गयी हैं। लगभग ८०००० छप गयी हैं। और २०००० बाकी है। एक लाख कहा था। जब पहली बार हाथ में आया था, तब रामजीभाई को कहा। तीस लाख पुस्तक यहाँ से छपे हैं, अभी तक किसी को कहा नहीं कि पुस्तक छपवाओ। ... यह

पुस्तक हाथ में आया (तो कहा), ओहो..! एक लाख पुस्तक छपवाओ। लगभग ८०००० तो छप गये हैं। आहा..! ऐसी चीज़। मठवाला, गोपनाथ में अन्यमति मठ (है)। और यहाँ एक प्रोफेसर है, भावनगर। स्कूल में बड़ा ब्राह्मण। उसे यहाँ आया और यह दिया। और वाँचन करके पत्र आया, महाराज! आपने क्या दिया! यह क्या है? उसमें कितनी चीज़ भरी है, वह जब मैं पढ़ता हूँ तब खबर पड़ती है। वह जब उसके गुरु के पास जाता था, गोपनाथ, जब वह गया तो उसके हाथ में यह पुस्तक था। गोपनाथ के जो गुरु थे, उसके हाथ में यह पुस्तक था। इस पुस्तक की महिमा करने वहाँ गया। वहाँ गया तो उसके हाथ में यह पुस्तक थी। फिर दोनों प्रशंसा करते थे। पत्र आया था। हम कुछ नहीं कह सकते। चाहे जितनी प्रशंसा करे, परन्तु यह पुस्तक क्या है! उपनिषद में नहीं है, ऐसी बातें इसमें आ गयी है। ऐसा उसके पत्र में आया था। आहाहा! मध्यस्थता से अभिमान छोड़कर, मैं कुछ जानता हूँ और मैं कुछ क्रियाकाण्ड करने में विचक्षण हूँ, उसे यह बात बैठनी कठिन पड़े। यह बात बैठनी, अन्दर में बैठे... आहाहा!

यहाँ तो अनन्त गुण भरे हैं। **अवगुण एक भी नहीं है।** वस्तु में अवगुण एक नहीं, अवगुण तो पर्याय है। गुण की विपरीत पर्याय है। इसलिए प्रश्न होता है न, कि सिद्ध में आठ गुण कहे, तो क्या वह गुण है? सिद्ध में आठ गुण कहे न? आठ कर्म के नाश के आठ गुण। वह गुण नहीं है, पर्याय है। गुण उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! सिद्ध आठ गुण सहित, व्यवहार से। निश्चय से तो अनन्त गुण सहित। आहाहा! आठ कर्म थे, उसका निमित्त का अभाव होकर यहाँ दशा प्रगट हुई तो आठ गुण कहने में आये। वह गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाल होते हैं। आठ गुण कहने में आते हैं, वह पर्याय है। सिद्ध के इतने गुण है, इतने गुण हैं, वह सब पर्याय है। गुण तो ध्रुव है। पर्याय प्रगट होती है, गुण प्रगट नहीं होता। आठ पर्याय तो प्रगट हुई है। कर्म का नाश होकर प्रगट हुई है। वह तो पर्याय है। अरे..! सिद्ध स्वयं पर्याय है। आहाहा! वह भी एक भेष है।

भगवान अनादि-अनन्त... आहाहा! अनादि-अनन्त अनन्त गुण का भण्डार, उसके समक्ष सिद्धपद तो एक भेष है, भेष है। आहाहा! वह भी समयसार में मोक्ष अधिकार पूर्ण करके कहा, मोक्ष का भेष चला गया। मोक्ष का भेष आया था। अधिकार है, मोक्ष अधिकार। मोक्ष चला गया अर्थात् जान लिया। वस्तु तो त्रिकाली है। मोक्ष तो एक

समय की पर्याय है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय वैसी की वैसी सादि-अनन्त काल रहेगी, परन्तु वह नहीं। जो उत्पन्न हुई, वह नहीं रहेगी। जो उत्पन्न हुई है, वह तो एक समय की रहेगी। क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्। सत् जो है, वह ध्रुव है और उत्पाद-व्यय है, वह पर्याय है। जितने उसको गुण प्रगट हुए, उसको गुण कहा, वह तो पर्याय है।

यहाँ कहना है, अवगुण। गुण की पर्याय को गुण कहा। तो गुण की विरुद्ध पर्याय को अवगुण कहा। अवगुण भी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ अवगुण कहा है न? अवगुण तो यह गुण है? अवगुण तो गुण की विरुद्ध एक पर्याय है। अवगुण विरुद्ध पर्याय (है)। जो पर्याय प्रगट हुई, उसको गुण कहा। परन्तु वह गुण नहीं है। गुण तो त्रिकाली पड़ा है अन्दर। उसमें कोई हलचल होती ही नहीं। जैसा है अनादि, ऐसा अनन्त काल (रहता है)। आहाहा! निगोद से लेकर सिद्ध तक द्रव्य स्वभाव तो जैसा है, वैसा है। त्रिकाल एकरूप है। उसमें फेरफार बिल्कुल होता नहीं। आहाहा! चाहे तो सिद्धपर्याय हो तो भी द्रव्य में फेरफार नहीं होता। चाहे तो निगोद हो तो भी द्रव्य में फेरफार नहीं होता। आहाहा! ऐसी द्रव्य की विभूति (है)। उसमें **अवगुण एक भी नहीं है।** आहाहा!

ओहो! यह मैं! ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी... भूतकाल में **सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।** आहाहा! कौतूहल करे, क्या है यह चीज़? इतनी-इतनी आत्मा की प्रशंसा करते हैं तो यह चीज़ है क्या? ऐसा कौतुहल भी कभी नहीं किया। आहाहा! अपनी चीज़ को देखने का कौतूहल नहीं किया। आहाहा! **ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी...** भूतकाल में। भूतकाल अनन्त काल में कौतूहल ही नहीं किया। अनन्त जीव अनन्त काल से उसको देखने को कौतूहल ही कभी नहीं किया।

कोई रानी निकली हो तो कौतूहल करता है। क्या कहते हैं? ओजल में। भावनगर की रानी ओजल में थी। वह एक बार निकली, खुली हो गई। ओजल निकाल दिया। गाँव के लोग सब ठाठ देखे। बाई ने ओजल (निकाल दिया)। मैंने भी.. यह वडिया है न? वडिया। वडिया के दरबार आदि सब आते थे। दरबार बहुत होशियार था। उसके पास जो राजकुमार था, उसके पास पढ़ने को आता था। वडिया। आसपास के राजकुमार। उन्होंने एक बार विनती की, महाराज! मेरे घर मेरी स्त्री के पास आहार लेने को (पधारिये)। लोगों को ऐसा लगे, उसकी स्त्री कैसी होगी? अन्दर आहार लेने को गये तो (शरीर देखो तो)

लटक गया था। दिखाव का कोई ठिकाना नहीं। लोगों को महिमा (आये)। परन्तु अन्दर देखा तो कुछ नहीं, कुछ नहीं था बेचारी। बोली, महाराज! शरीर ऐसे लटक गया था। चमड़ी... कोई आकार का दिखाव नहीं, सुन्दर नहीं, कुछ नहीं। दुनिया को ऐसा लगे, राजा की रानी कैसी होगी?

वैसे यहाँ नहीं है। आहाहा! प्रभु! यह तो अनन्त गुण का वैभव कोई अलौकिक है। जिसको अन्तर में देखने में आता है, वह कभी देखा नहीं। कभी सुना नहीं। कभी कौतूहल किया नहीं, देखने का कौतूहल किया नहीं। यह क्या चीज़ है? जानने में मैं सबको जानता हूँ, परन्तु जाननेवाला कौन है? आहाहा! यह है, यह है, यह है। परन्तु यह है—ऐसा जाना किसने? ऊर्ध्वता नाम का एक गुण है। आता है न? समता। समता, रमता, ऊर्ध्वता। श्लोक आता है। समयसार नाटक में। ऊर्ध्वता की व्याख्या श्रीमद् ने की है। पुस्तक में ऊर्ध्वता की व्याख्या की है।

कोई भी चीज़ जानने के पहले विचारने के पहले ज्ञान न हो तो जाने कौन? कोई भी चीज़, ज्ञान की मुख्यता न हो तो जाने कौन? तो वास्तव में तो ज्ञान में वह चीज़ ज्ञात होती है, वह तो ज्ञान ज्ञात होता है। आहा..! यह चीज़, यह.. यह.. यह.. जिसकी सत्ता में यह सब दिखता है, वह पर को स्पर्श किये बिना, पर को स्पर्श किये बिना अपनी पर्याय के सामर्थ्य से स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य से सब देखने में आता है। जिसकी एक पर्याय में इतना-इतना देखने में आये, उसको छुए बिना अपने दिखने में आये, तो उसके गुण का क्या कहना? प्रभु! आहाहा! उसका गुण जो त्रिकाल, जिसकी पर्याय में यह जानने में आता है, ऐसा है नहीं। ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। क्यों? - कि परद्रव्य को तो कभी छूता नहीं। ज्ञान है, वह तो परद्रव्य को कभी छूता नहीं। फिर भी परद्रव्य सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से उत्पन्न हुआ है। वह भी कोई अलौकिक चीज़ है कि अनन्त को जाने, तो उसके गुण का क्या कहना! आहा..!

यह कहते हैं, **ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये...** अरे! **जीव ने कभी सच्चा कौतूहल...** सच्चा (कौतूहल) शब्द क्यों लिया है? कौतूहल तो ऐसे करता है कि कैसा है? परन्तु सच्चा कौतूहल नहीं किया। कौतूहल के साथ सच्चा शब्द विशेष लिया। आहाहा! बहिन के शब्द हैं। **कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।** आहाहा! क्या चीज़ है यह?

सबको एक ओर रखो, यह चीज़ क्या है ? इस चीज़ की पहिचान बिना और अनुभव बिना सब क्रियाकाण्ड आदि नौवीं ग्रैवेयक गया, अनन्त भव ऐसे ही रहे। अनन्त-अनन्त भव निगोद में भी गया। द्रव्यलिंगी मुनि... लिंगपाहुड़ में ऐसा पाठ है, द्रव्यलिंग कितनी बार लिया ? कि अनन्त बार। और द्रव्यलिंग लेने के बाद भी एक कण खाली नहीं है कि जिसमें अनन्त जन्म-मरण नहीं किये हो। ऐसा लिंगपाहुड (में कहा है)। अष्टपाहुड में लिंगपाहुड है। द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत, नग्नपना और आचरण की कड़क क्रिया, एक दाना भी उसके लिये बनाया हो तो आहार न ले, ऐसी क्रिया तो अनन्त बार हुई। आहाहा! कभी आत्मा क्या चीज़ है (उसका कौतूहल किया नहीं)।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण क्रियाकाण्ड सब दुःख है। आहाहा! राग है, विकल्प है, दुःख है, जहर है। भगवान अमृतस्वरूप है। उससे विरुद्ध ये भाव है। अमृतस्वरूप देखने का कौतूहल भी नहीं किया। प्रगट भले न किया, कहते हैं। आहाहा! दूसरी कोई अनजानी चीज़ आये, कहा न ? महारानी जब घोड़ागाड़ी में बाहर निकली थी, भावनगर। लोग देखने के लिये (उमड़ पड़े), रानी साहिबा ने ओजल छोड़ दिया। रानी साहिबा ने ओजल छोड़ दिया।

ऐसे भगवान आत्मा में राग की एकता छोड़ देता है, ओजल छूट जाता है। पूरी चीज़ दिखने में आती है। आहाहा! उसका कौतूहल भी कभी नहीं किया, ऐसा कहते हैं। उसके सिवा दूसरी चीज़ की महिमा में ठीक है, ऐसा रुककर, वही रुक गया है। आहाहा! भगवान एक ओर रह गया। कौतूहल ही नहीं किया। २४४ (पूरा हुआ)। इसके बाद २५१।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े॥२५१॥

२५१। बहुत सरस बात है, है दो पंक्ति। इसका तो बैनर बना है। इस पंक्ति का बैनर बना है। मुम्बई में। यहाँ है ? राजकोट में... इस दो पंक्ति का।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! **द्रव्य उसे कहते हैं...** भगवान आत्मा का द्रव्य। आहाहा! यहाँ तो समुच्चय द्रव्य लिया है। परन्तु द्रव्य उसे कहते हैं कि **जिसके कार्य के लिये...** द्रव्य की पर्याय के कार्य के लिये। द्रव्य की पर्याय के कार्य के लिये। **दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** आहाहा! यह चीज़ है। यह वीतराग का मर्म है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव का अभिप्राय-हृदय यह है। द्रव्य उसको कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये दूसरे द्रव्य की, साधन की राह देखनी पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसमें तो कितना भरा है! आहाहा! आहाहा! बहिन को स्त्री का देह आ गया न, इसलिए लोगों को बाहर में कीमत नहीं आती। आहाहा!

यह महा शब्द है। पदार्थ-द्रव्य उसको कहते हैं कि उसके कार्य के लिये, जिसके कार्य के लिये-सम्यग्दर्शन के कार्य के लिये, सम्यग्ज्ञान के कार्य के लिये, सम्यक्चारित्र के कार्य के लिये, केवलज्ञान के कार्य के लिये, सिद्धपद के कार्य के लिये... यह सब कार्य है। आहाहा! **द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** न देखना पड़े। आहाहा! अपनी तैयारी होवे तो निमित्त साधन तो जगत में पड़ा ही है। राह नहीं देखनी पड़े कि यह निमित्त मिले, तब मेरा कार्य होगा। ऐसा निमित्त मिले तो कार्य होगा, ऐसी राह देखनी न पड़े। प्रभु! ऐसा तेरा द्रव्य है। तेरा द्रव्य क्या, सब द्रव्य ऐसे हैं। आहाहा! यह तो सामान्य व्याख्या है न।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान द्रव्य उसे कहते हैं कि **जिसके कार्य के लिये...** जिसकी पर्याय के लिये... आहाहा! पर्याय बिना का तो द्रव्य कभी कहीं नहीं है। तीन काल में कोई द्रव्य पर्याय बिना का तो है नहीं। तो वह पर्याय प्रगट करनी हो, उसमें पर की राह देखना पड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! वज्रनाराच संहनन होना चाहिए, फलाना... वह तो तू कार्य करेगा वहाँ वह होगा ही। राह देखना नहीं पड़े। तेरे केवलज्ञान की तैयारी यहाँ की, तो वज्रनाराच संहनन, मनुष्य आदि तो होंगे ही। परद्रव्य की राह देखना पड़े अपने कार्य के लिये—ऐसा द्रव्य है नहीं। आहाहा! यह तो द्रव्य को पराधीन, पराधीन (मान लिया है)। ऐसा अमुक निमित्त मिले तो ठीक पड़े, अमुक निमित्त मिले तो ठीक पड़े। निमित्त तो निमित्त की पर्याय से निमित्त आता है। द्रव्य में कोई निकम्मा द्रव्य नहीं है। क्या कहा? द्रव्य जितने हैं, उसमें कोई निकम्मा नहीं है। निकम्मा अर्थात्

पर्यायरूपी कार्य बिना वह द्रव्य रहता नहीं। जितने अनन्त द्रव्य हैं, वह निकम्मे अर्थात् काम अर्थात् पर्याय... पर्याय को काम कहते हैं। कार्य कहो, काम कहो। काम-पर्याय बिना-कार्य बिना कोई द्रव्य कहीं कभी रहता नहीं। समझ में आया?

परमाणु हो, धर्मास्तिकाय हो, आकाश हो, भगवान आत्मा हो, अपनी पर्याय करने में... आहाहा! अपनी अवस्था करने में सम्यग्दर्शन प्रगट करने में, कोई गुरु की राह देखना पड़े, चारित्र प्रगट करने में कोई शरीर की मजबूताई की जरूरत पड़े, ऐसी राह देखना नहीं पड़ती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! भले कठिन लगे। थोड़े शब्द में बहुत भरा है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की पुकार है कि द्रव्य उसे कहते हैं कि उसकी पर्याय के बिना द्रव्य कभी होता नहीं और उसकी पर्याय के लिये परद्रव्य की राह देखनी पड़ती नहीं। आहाहा! गजब बात है! दो पंक्ति है। पूरे जैनदर्शन का सार है। यह तो बहिन के मुख से उस समय निकल गया। आहाहा! वस्तु उसे कहें कि अपने कार्य के लिये-अपनी पर्याय के लिये, कार्य अर्थात् पर्याय, पर्याय है वही कार्य है न! दूसरा क्या कार्य है? कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है, उसका अर्थ कि कोई द्रव्य पर्याय बिना नहीं है। कोई द्रव्य पर्याय बिना तीन काल में नहीं रहता। आहाहा! पर्याय बिना रहे तो, पहिचानने में तो पर्याय ही कारण है। ध्रुव तो ध्रुव वस्तु है। पर्याय से ही वह वस्तु जानने में आती है। आहाहा!

नजर में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ख्याल में आते हैं परन्तु पर्याय के ख्याल से सबका ख्याल आता है। यह पर्याय इस गुण की है, यह गुण इस द्रव्य का है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा उपदेश। क्या करें? आहा..! यहाँ तो पर बिना चले नहीं, पर बिना चले नहीं। बहुत बार ऐसा कहते हैं, एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य बिना चले नहीं। प्रभु! एक द्रव्य में अनन्त अस्तित्वगुण पड़ा है और एक द्रव्य में उससे अनन्तगुने जो गुण हैं, उसका नास्तिपना पड़ा है। आहाहा! अनन्त अस्तित्व है और अनन्त नास्तित्व है। छोटे परमाणु में भी ऐसा है, प्रभु! आहाहा! अरे..! निगोद के जीव। विज्ञान मान न सके। ऐसा एक पाठ है, सम्प्रदाय में हम कहते थे कि जिसे यथार्थ खबर नहीं है, वह अनेक प्रकार से कलंक लगाते हैं, सत्य को कलंक लगाते हैं। आल समझे? अभ्याख्यान करते हैं-कलंक। ऐसा

नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा जिसने बहुत कलंक लगाया है, वह जीव कहाँ जाएगा कि वह जीव है, ऐसा नहीं माननेवाली (गति में जाएगा)। क्योंकि उसने बहुत कलंक लगाया है। वह वहाँ जाएगा कि उसको जीव मान सके नहीं, वहाँ जाएगा। निगोद में जाएगा। आहाहा! भगवान के सिवा कौन कहे यह ?

जो स्वयं को कलंक लगाता है, वह सबको कलंक लगाता है। जो सबको कलंक लगाता है, वह स्वयं को कलंक लगाता है, ऐसा पाठ है। कलंक अर्थात् यह नहीं, यह ऐसा नहीं है। आप कहते हो ऐसा नहीं है। ऐसे सत्य बात को ऐसा नहीं है, (ऐसे ना करके), असत्य बात की हाँ कहकर सत्य को कलंक लगाया, ऐसा सत्य नहीं है, इनकार किया तो वह ऐसे स्थान में जाएगा, उसको दूसरा 'जीव है'—ऐसा मान सके नहीं। उसने सत् को कलंक लगाया है। अपने सत् को दूसरा मान सके, ऐसे स्थान में नहीं जाएगा। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बात है।

द्रव्य उसे कहते हैं... आहाहा! प्रभु आत्मा को ऐसा कहते हैं कि जिसके कार्य के लिये-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से लेकर केवलज्ञान तक, अपने निर्मल कार्य के लिये, दूसरे साधनों की (राह देखना न पड़े)। आहाहा! हो, साधन साधन के कारण से हो, परन्तु कार्य के लिये उसकी राह देखना पड़े, ऐसा है नहीं। इसलिए उस साधन का निषेध कर दिया है। आहाहा! अपनी स्वतन्त्रता, कर्ता होकर पर्याय करता है, पर्याय में कर्ता होकर (कार्य करता है)। कर्ता की परिभाषा यह है कि स्वतन्त्रपने करे, सो कर्ता। व्याकरण में है, स्कूल में भी है।

कर्ता उसको कहते हैं,... हमारे चौथी कक्षा में आया था, उस दिन। स्कूल में। बहुत विस्तार है। एक पुस्तक मँगवायी थी। यहाँ बोर्डिंग है न ? उसमें छः बोल का अर्थ दिया है। कर्ता, कर्म, करण। कर्ता उसे कहें कि स्वतन्त्रपने करे, सो कर्ता। जिसको दूसरे की सहायता की अपेक्षा रहे नहीं, उसका नाम कर्ता है। प्रत्येक द्रव्य में एक समय में षट्कारक की परिणति होती है, अनादि-अनन्त। प्रति समय षट्कारक की परिणति—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, एक समय में प्रत्येक द्रव्य की, परमाणु की पर्याय में भी षट्कारक, सिद्ध की पर्याय में षट्कारक। आहाहा! निगोद की पर्याय में षट्कारक

(है)। षट्कारक में पहले कर्ता आता है। षट्कारक आते हैं न? व्याकरण में आते हैं। स्वतन्त्र कर्ता। किसी की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा (को) अपनी पूर्ण दशा प्राप्त करने में किसी की अपेक्षा नहीं है। पूर्ण करने में थोड़ी मदद ... आलम्बन मिले, गुरु आदि का, तो आगे बढ़ जाए, ऐसा द्रव्य स्वभाव है नहीं। आहाहा! वाणी में ऐसा कहने में आता है, व्यवहार में, कि गुरु मिले तो सच्ची बात समझ में आवे। सब व्यवहार है। व्यवहार का पार नहीं। आहाहा! यहाँ द्रव्य पर दृष्टि करने से व्यवहार का अन्त आ जाता है। आहाहा! द्रव्य ऐसा है... बहुत गहरी बात है। आहाहा! चाहे तो निगोद में द्रव्य हो, किसी की मदद से वहाँ रहा है, ऐसा नहीं। अपनी पर्याय की स्वतन्त्रता एक समय में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान से वहाँ पर्याय हुई है। तो वह कर्ता स्वतन्त्र है। निश्चय से तो कर्ता पर्याय, द्रव्य की अपेक्षा रखती नहीं, परन्तु लक्ष्य हो जाता है। पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर होता है, वह स्वतन्त्रपने होता है। क्या कहा? पर्याय में जो षट्कारक है, उस पर्याय का आश्रय तो द्रव्य है। लक्ष्य तो वहाँ है। परन्तु वह स्वतन्त्र कर्ता होकर लक्ष्य करती है। आहा..! ऐसी बातें। समझ में आया?

अपनी पर्याय में... प्रत्येक द्रव्य। जड़ में भी ऐसी बात है। परमाणु में भी अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। अनन्त गुण में एक समय की पर्याय होती है। उसमें षट्कारक के परिणमन में दूसरे गुण की पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! प्रभु आत्मा... वह चीज़ है कि नहीं, उसकी तो जड़ को खबर भी नहीं। उसको जाननेवाला आत्मा तो महाप्रभु स्वतन्त्र है। आहाहा! कोई भगवान उसको करता है कि कोई भगवान मिले तो कुछ हो जाए, आहाहा! ऐसा है नहीं।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये... कार्य अर्थात् पर्याय। कार्य अर्थात् अवस्था। कार्य अर्थात् द्रव्य की दशा। वर्तमान उसकी दशा। उस दशा-कार्य के लिये **दूसरे साधनों की...** उसके साधन सिवा... क्योंकि द्रव्य में करण / साधन नाम का गुण पड़ा है। प्रत्येक द्रव्य में करण / साधन नाम का गुण पड़ा है। कर्ता, कर्म, करण गुण है। अन्दर गुण पड़े हैं। कर्ता गुण है, कर्म गुण है, करण गुण है। यहाँ पर्याय की बात चलती है। आत्मा में भी एक करण नाम का गुण है। ४७ शक्ति में आता है। करण अर्थात् साधन। अपना

साधन अपने से होता है। अपने साधन में पर के साधन की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की... आहाहा! यहाँ तो कहे, पर बिना चले नहीं, पर बिना चले नहीं। पैसे बिना सब्जी मिले नहीं, पैसे बिना आहार का दाना मिले नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बेचारे निमित्त का क्या होगा?

समाधान : निमित्त द्रव्य नहीं है? द्रव्य नहीं है? वह पर की सहायता की (अपेक्षा) नहीं रखता।

कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े, उसका नाम यहाँ द्रव्य कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)